समकालीन परिदृश्य में
ग्रामीण विकास

डॉ. धनंजय शर्मा

अनुक्रम

भाग–प्रथम (ग्रामीण विकास एवं अवधारणा)

1. ग्रामीण विकास की अवधारणा एवं सिद्धांत 1
   डॉ० शशी प्रकाश सिंह
2. ग्रामीण विकास के बदलते प्रतिमान 21
   डॉ० मुकेश कुमार श्रीवास्तव

भाग–द्वितीय (ग्रामीण विकास एवं शिक्षा)

3. ग्रामीण विकास में बुनियादी शिक्षा 36
   डॉ० धनंजय शर्मा

भाग–तृतीय (ग्रामीण विकास एवं पर्यावरण)

4. वैश्वीकरण, पर्यावरण और जीवन की गुणवत्ता (वर्तमान भारत के संदर्भ में) 51
   डॉ० अंचलेश कुमार
5. वैश्विक पर्यावरण के युग में जैविक गुणवत्ता 66
   डॉ० दीपमाला

भाग–चर्तुथ (ग्रामीण विकास एवं महिला)

6. पंचायती राज एवं महिला नेतृत्व विकास–एक विमर्श 77
   डॉ० राजेश कुमार

5

वैश्विक पर्यावरण के युग में जैविक गुणवत्ता

डॉ. दीपमाला[1]

शोध-पत्र सारांश

वर्तमान वैश्विक युग में पर्यावरण संरक्षण विश्व के सम्मुख एक बड़ी चुनौती है। जिन देशों में जनसंख्या अधिक है वहाँ पर्यावरण सम्बन्धी समस्या भी उतनी ही बड़ी है। देशों का कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि प्राकृतिक सम्पदा जो ईश्वरीय कृति है उसे नष्ट करना, उसका दुरुपयोग करना मानव लम्बे समय से जारी रखे हुए है। आज विश्व के अनेक सभ्य एवं विकसित देशों में पीने के लिए स्वच्छ जल, साँस लेने के लिए शुद्ध वायु, खाने के लिए अप्रदूषित भोजन और कृषि के लिए अच्छी मिट्टी का अभाव हो चुका है। आरम्भ में हमारी धारणा थी कि जितना प्राकृतिक पर्दाथों का उपयोग होगा यह उतने ही समृद्ध होंगे किन्तु यह धारणा अब गलत साबित हो रही है। प्राकृतिक सम्पदाओं के अंधाधुंध प्रयोग से इसका संतुलन बिगड़ने लगा है। अभी तक के अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि पृथ्वी पर ही जीवन है और यह जीवन इस पृथ्वी ग्रह की सबसे बड़ी विशेषता, पर्यावरण संतुलन के कारण ही सम्भव है। किन्तु आज वही मानव पर्यावरण संतुलन को बिगाड़ने पर तुला है। "उपभोक्तावादी संस्कृति ने विश्व मानव समुदाय के आचार विचार, संस्कार मानसिकता एवं आधुनिक जीवन शैली को गहरे तक प्रभावित किया है।

---

[1]जन्तु विज्ञान विभाग,सरदार भगत सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर(ऊधम सिंह नगर), उत्तराखण्ड-२६३१५३

औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व प्रकृति के साथ तालमेल की इकोफ्रैण्डली जीवन शैली का स्थान आज प्रकृति से खिलवाड़ तथा प्राकृतिक संसाधनों के असीमित एवं अमर्यादित दोहन की आधुनिक मानसिकता ने ले लिया है।" प्राकृतिक सम्पदाओं का विनाश करके हम जो ऊँचे–ऊँचे मॉल विकसित कर रहे हैं, हम उसी के नीचे दबने को तैयार हैं। भारत में सर्वप्रथम संविधान में पर्यावरण को स्थान दिया गया तथा कहा गया कि– "यह राज्य का कर्तव्य है कि वह पर्यावरण संरक्षण एवं रख–रखाव के लिए तथा देश के वनों एवं वन्य जीवन की सुरक्षा के लिए कार्य करे।"परन्तु वर्तमान में इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जा रहा है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। आज हम विकास के साथ–साथ विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। हिमालय पर्वत भारत भूमि का गर्वोन्नत मुकुट है। इसके पीछे महत्वपूर्ण कारण यह है कि पर्वत प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर एवं दर्शनीय आकार होते हैं और ये मन में पवित्र भाव जगाते हैं। पृथ्वी और पर्वतों की भाँति जल की पूजा का भाव भी यहाँ है। वर्षा के संदर्भ में इन्द्र, वरुण पर्जन्य आदि देवताओं की मान्यता प्राचीन काल से रही है। इस अवस्था में जैविक गुणवत्ता अवश्य उन्नत होगी तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन होगा। प्रस्तुत शोध–पत्र में द्वितीयक स्रोतों एवं तथ्यों के आधार पर वैश्विक पर्यावरण के युग में जैविक गुणवत्ता के संदर्भ में समझने का एक प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्दः वैश्विक ,पर्यावरण, संरक्षण, विश्व, जनसंख्या, सम्पदा, जैविक, गुणवत्ता, पृथ्वी, विश्व, वर्तमान परिवर्तन, भारत, संरक्षण, प्रकृति

परिचय

रोटी, कपड़ा और मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य और सड़क, विद्युत, पेयजल एवं संचार इन तीनों बिन्दुओं के नौ विकासात्मक सोपानों की सुगमता व उपलब्धता से व्यक्ति के जीवन की सामान्य गुणवत्ता का आकलन किया जा सकता है। वैश्विक पटल पर विकसित, विकासशील तथा तीसरी दुनिया की लगभग 7 अरब जनसंख्या के कारण जहाँ एक ओर भूमि पर दबाव बढ़ा है, वहीं दूसरी ओर कृषि एवं वन के लिये भूमि की उपलब्धता घटी है। संतोषजनक, अच्छा, उत्तम व उत्कृष्ट गुणवत्तापरक जीवन को भूख से लड़ती जनता के मध्य खोजना स्वयं को धोखे में रखना होगा। विश्व के सर्वाधिक भूखे लोग सब सहारा, अफ्रीका तथा दक्षिण एशिया के देशों में हैं। अफ्रीका–एरिटिरिया, इथोपिया, सूडान, केन्या, युगाण्डा, सोमालिया, तंजानिया, जिम्बाम्बे,

मनाली, स्वाजीलैण्ड, अंगोला, मोजाम्बिक, लैसोथो, मैडागास्कर, मारिटोनिया, लाइबेरिया, गिनी, कैप वर्डे, कोर्ट डी, आवरी, सियरालियॉन, कांगों, केन्द्रीय अफ्रीका राज्य, बुरून्डि, एशिया में मंगोलिया, जार्जिया, तजाकिस्तान, अफगानिस्तान, अमेरिका में एलसल्वाडोर, ग्वाटेमाला, हान्डुरास, निकारागुआ तथा यूरोप में युगोस्लाविया आदि। भारत में उड़ीसा राज्य के कोरापुर, बोलनगिरी, कालाहाण्डी जनपद में भूख से होने वाली मौतें, राजस्थान में भूख से तड़पते हुए लोगों द्वारा घास खाने को विवश होना ये कुछ ऐसे उदाहरण है जो जैविक गुणवत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

मानवकृत विनाशात्मक विकास के अहंकार ने प्रकृति के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर निश्चय ही अभिशप्त जीवन की पटकथा–पृष्ठभूमि निर्मित कर ली है, फलतः प्रकृति प्रदत्त निःशुल्क संतुलित जलवायु आज विषमता को प्राप्त हो चुकी है। खतरे की सम्भाव्यता से मना नहीं किया जा सकता है। मानवीय गतिविधियों के कारण ग्रीन हाउस गैंसों में वृद्धि हुई है जिससे पृथ्वी की सतह में अतिरिक्त ताप वृद्धि हुई है जिसके कुपरिणाम हैं–अम्लवर्षा, हिमनदों की बर्फ का पिघलना, मीठे जल एवं सामान्य जल मण्डलों का सूखना आदि। आई0पी0सी0सी0 (इण्टरगवरमेन्टल पेनल ऑन क्लाइमेट चेन्ज) के आकलन के अनुसार अंटाकटिका की बर्फ से पिघलने से समुद्र के जल स्तर में एक मीटर ऊपर उठने से करीब 30 करोड़ लोग प्रभावित होंगे तथा निम्न तटीय क्षेत्र जलसमाधि ले लेंगे। लाखों लोग पर्यावरण शरणार्थी बन जायेंगे। इससे निपटने के लिये सरकार, संयुक्त राष्ट्र संघ, निजी संस्थान, गैर–सरकारी संगठन, पर्यावरण कार्यकर्ता सहित अन्य सामान्य जन भी प्रयासरत हैं। आँकड़ों से स्पष्ट हैं कि अंटार्कटिका के जाडे के दिनों में औसत तापमान आज से 50 वर्ष पूर्व जितना था उससे 100 गुणा आज अधिक है। इसी तरह ओजोन परत का क्षरण एक भूमण्डलीय समस्या है, अतः दुनिया के सभी देशों को स्वयं के अस्तित्व को बचाने के लिये ओजोन रक्षा का नैतिक दायित्व ईमानदारी पूर्वक अमल में लाना होगा।

जल, जंगल, जमीन, हवा, वन्यजीव (जैव विविधता) की उपलब्धता ही यह तय करेंगे की सही मायने में किसी राष्ट्र का कितना विकास

हुआ है। एटमी विनाशक आविष्कारों की होड़ में शायद हम भूल गये हैं कि जल के बिना जीवन अधूरा है, लेकिन क्या विकास का पैमाना तय करते समय हम जल की कीमत को समझते हैं? जहाँ जंगल न हो उस देश के प्राणवायु का स्रोत क्या–कितना होगा? कंकरीट के जगल खड़े करते समय हम वास्तविक जंगलों को क्यों भूला देते हैं? भू–संरक्षण के बिना उचित गुणवत्तापरक खाद्यान्न कहाँ से आयेगा? वायु, प्रदुषण मुक्त कैसे हो? वन्य जीवों का महत्व हमसे कमतर क्यों हो गया? जैव विविधता एवं संतुलन ही वैश्विक पर्यावरण का मौलिक परिचय है। मानवीय गतिविधियों के अतिक्रमण, हलचल, दखल, में प्रकृति के क्षेत्र में अवांछित छेड़–छाड़ द्वारा तथाकथित विकास का जो मॉडल हमारे सम्मुख दृष्टिगोचर होता है, वह क्षणिक भौतिक सुख व अहं को तुष्टि दे सकता है, लेकिन आने वाली नस्लों को प्राकृतिक धरोहरों का मौलिक लाभरूप नहीं। यह उच्च स्तरीय अवधारणा थी कि वैदिक ऋषि, नदियों को अपनी बात सुनाने के लिए प्रार्थना करते थे। अपनी पर्यावरणीय शुद्धता को बनाये रखने के कारण गंगा को मैय्या कहकर पूज्य माना गया है। यह सभी उदाहरण पर्यावरण और समाज के संवेदनशील सम्बन्धों की ओर इशारा करते हैं। वैश्विक पर्यावरण से संबंधित तथ्यों को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–

वैश्विक पर्यावरण क्या है ?

खनन की अनुमति तथा पर्यावरण पर सहमति भला दोनों एक साथ कैसे चल सकते हैं। अपने देश में कोसी, केदारनाथ, कश्मीर आपदा के संदर्भ में जानकार कहते हैं कि ये आपदायें प्रकृति जनित कम मानव जनित अधिक हैं। अवैध अवैज्ञानिक खनन, घटते–कटते वन, नदी बहाव में अतिक्रमण एवं दिशान्तरण, पहाड़ों पर अत्यधिक निर्माण, एस0ई0जेड0, बदलते जीवन शैली व भूकटाव ने पूरे पर्यावरण को दुष्प्रभावित किया है, ऐसी परिस्थितियों में जब जान के ही लाले हो गुणवत्ता का प्रश्न बेमानी होगा। जीवन को सरल सुगम एवं सुविधामय बनाने का नाम ही विज्ञान है। विज्ञानोत्कर्ष के साथ ही मेडिकल, इंजीनियरिंग, उड्डयन, सड़क निर्माण, युद्ध कौशल, अतंरिक्ष विज्ञान, दूरसंचार, सूचनातंत्र, बाँधनिर्माण ने इंसान में बेहतर जिदंगी जीने की

ललक बढ़ायी है। सुविधा जब भोग विलासिता अय्यासी का पर्याय बन जाती है अर्थात् अंधाधुंध दोहन परिणामतः ग्रीन हाउस गैसों के चलते पूरी दुनिया के ऋतु चक्र पर असर पड़ा। अतिवृष्टि, अनावृष्टि व ओलावृष्टि ने जीवन की गुणवत्ता पर कुप्रभाव डाला है। इसके लिये विश्व विरादरी एक–दूसरे पर अंगूली उठाकर स्वयं दोषारोपण नहीं कर सकती। निःसन्देह अमेरिका तथा उसके मित्र देशों का योगदान अन्य विकासशील देशों की तुलना में पर्यावरण असंतुलन में अधिक है। तीसरी दुनिया के देश जहाँ अतिप्राथमिक सुविधाओं के लिये संघर्षरत है। वहाँ गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, अन्धविश्वास, उत्पीड़न, शोषण, हताशा, निराशा, पिछड़ापन एवं कुपोषण है किन्तु वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कौन कर रहा है? चंद मुठ्ठीभर देशों द्वारा पर्यावरण को जो अपूर्णनीय क्षति पहुँचायी जा रही है उसकी कीमत पूरी दुनिया के जीवन मात्र को भुगतनी पड़ रही है। आज भले ही हम सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक पर्यावरण की दृष्टि से किंचित स्वयं को सभ्य व गौरवान्वित घोषित करने लगे किंतु प्राकृतिक पर्यावरण की दृष्टि से समग्र मानवता के आधारभूत सुविधाओं का अभाव सर्वथा कमोवेश देखा जा सकता है। ऐसे वैश्विक पर्यावरण में जैविक गुणवत्ता स्तरीय नहीं कही जा सकती। विकास का मानक मात्र जी0डी0पी0 ही नहीं है, परम्परागत प्राकृतिक धरोहरों का अल्पाधिक यथारूप बने रहना विकास का वास्तविक प्रगति सूचक होगा न कि उसे नेस्तानाबूद कर देना। भूमंडलीकरण के इस घनघोर दौर में धनी देशों की जीवन शैली का अन्धानुकरण हमें परम्परागत लाभकारी पौष्टिक भोजन के स्थान पर स्वादिष्ट मात्र आधुनिक भोजन की ओर ले चला है। नूडल्स, वर्गर, सैंडविच, पास्ता, मंचूरियन, फ्रूट सैलेड विद आइसक्रीम से उन देशों की दूरी देखी जा रही है जो इसके अन्वेषक एवं मूल उपभोक्ता थे। किन्तु आधुनिकता के नाम पर आर्थिक सामर्थ्य की सीमा में आने वाले इन भोजनों पर विकासशील व तीसरी दुनिया के देश लार टपकाते देखे जा सकते हैं। आधुनिक जीवन शैली की प्रदर्शनप्रियता इस कदर है कि अमीर वर्ग जहाँ मैदा एवं बेसन से बने खाद्यान्नों के स्थन पर मोटे अनाजों की ओर महत्ताकर्षित हुआ है, जबकि वहीं मध्यम एवं निम्न मध्यम, निम्न वर्ग प्रदर्शनकारी प्रवृति के

कारण तथा कथित अमीरों के खाद्यान्नों की ओर तेजी से बढ़ता चला जा रहा है। इसी तरह एक अन्धानुकरण दौर है प्लेट या भोजन थाल में जूठा केक नामरूप में ढ़ेर सारा भोजन छोड़ देना, 'स्टेटस सिम्बल' के नाम पर खाद्यान्न की बर्बादी यह वैश्विक सामाजिक, नैतिक, पर्यावरणीय दायित्वों के प्रति घोर उदासीनता है। वह भी इन तथ्यों के मध्य कि दुनिया में 1.3 अरब टन भोजन सामग्री बर्बाद कर दी जाती है ,जिसकी मात्रा उपसहारा अफ्रिका में पैदा की जाने वाली समस्त खाद्य सामग्री के बराबर है। जिससे 3 अरब लोगों को खाना खिलाया जा सकता है। आँकड़ें कहते हैं कि प्रति 07 व्यक्ति में से 01 व्यक्ति भूखा सोता है, और प्रत्येक दिन पाँच साल से कम उम्र के 20 हजार बच्चें भूख के कारण दम तोड़ देते है। ये दो चेहरे हैं जो कि स्याह एवं सफेद वर्ग में हमें वर्तमान वैश्विक पर्यावरण में जैविक गुणवत्ता से परिचित कराते हैं।

जाने यह कैसी खबरें हैं एक तरफ अवाम भूख से दम तोड़ दें, दूसरी ओर अन्न भण्डारों में सड़ता रहे। उत्पादन, भण्डारण, वितरण, निर्माण, तथा उपभोग की प्रक्रिया में लगभग 50 प्रतिशत अन्न मनुष्य की जिहवा तक नहीं पहूँच पाता, और बड़ी मात्रा में कार्बन–डाई–आक्साईड के उत्सर्जन का कारण बर्बाद भोजन ही है। संयुक्त राष्ट्र संघ की दिशा नीति के अनुसार ''सोचिए, खाइए एवं बचाइए'' की अनुपालन से हम जहाँ भोजन की बड़ी मात्रा में बचत कर सकते हैं वहीं कई लोगों की जैविक गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार ला सकते हैं जो वैश्विक पर्यावरण के लिए भी शुभ संकेत होगा। वैश्विक पर्यावरण में जीवन की गुणवत्ता का मानकानुसार न होने का एक पहलू यह भी है कि शारीरिक श्रम का अभाव, धूम्रपान, गुटखा कल्चर ने वैश्विक स्तर पर जैविक गुणवत्ता में ह्रास किया है। शरीर की वाह्य एवं आन्तरिक, संरचना एवं अंगों की कार्य–प्रक्रिया का अल्प सामान्य ज्ञान रखने वाला व्यक्ति स्वादिष्ट या पौष्टिक भोजन में से पौष्टिक भोजन का चुनाव करता है। अति सुपोषण या अति कुपोषण दोनों जैविक गुणवत्ता बनाये रखने में सहायक नहीं हो सकते हैं। भूख एवं कुपोषण से रोग प्रतिरोधक क्षमता न्यूनतम है जबकि उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अपच, कब्ज, अनिद्रा जैसी बीमारियाँ तेल, बसा, नमक, चीनी,

मिर्च, मसाला जैसे खाद्यान्न की प्रचुरता की देन कही जाती है। कैंसर, एड्स जैसी लाइलाज बीमारियों के लिए एक सीमा तक आधुनिक जीवन शैली जिम्मेदार है।

जैविक गुणवत्ता की उपयुक्तता

विश्व की अधिकांश सभ्यताएँ नदियों के तट पर बसी किन्तु भारत में नदियों के अविरल प्रवाह को बाधित करने के साथ ही उसमें नाला, नाली सीवेज निस्तारण करने से जैविक गुणवत्ता पर गहरे प्रश्न चिन्ह लग गये हैं। नदियों की सफाई के नाम पर न जाने कितने करोड़ों डॉलर की परियोजनाएँ चल चुकी या चल रही हैं पर विषयगत नियत साफ हुए बिना नदियों की सफाई भला कैसे होने लगी? धार्मिक मान्यताओं, लोक विश्वासों ने भी भारत की प्रमुख 150 नदियों में से 76 नदियों को प्रदूषित की हैं। औद्योगिक प्रदूषण का एक उदाहरण पर्याप्त होगा। रानीपेट (तमिलनाडु) में चमड़े के हजारों कारखाने हैं, यह शहर इसी कारण प्रति व्यक्ति आय में सबसे आगे है। साथ ही यह भी सच है कि यह शहर दुनिया के 10 सर्वाधिक प्रदूषित शहरों की गिनती में है। वहाँ कई नदी की सौ मीटर गहराई तक भूजल में बदबू और जहर से पूरे इलाके की नदी की बदबू असहनीय व दमघोटू है। विकास एवं पर्यावरण का संतुलनकारी सहअस्तित्व कैसे सम्भव होगा जिससे कि हमारे पर्यावरण में जैविक गुणवत्ता से समझौता न करना पड़े। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) की एक रिपोर्ट के अनुसार समृद्ध देशों की औसत आय व सैन्य खर्चों में एक उछाल आता जा रहा है। वैश्वीकरण का समूचा तंत्र विकसित राष्ट्रों के हाथ में है तथा वैश्वीकरण की नीतियों को लागू करने का स्रोत एवं बाजार तीसरी दुनिया के देश हैं, ऐसे ही धनपिपासु, युद्ध पिपासु, उपनिवेश पिपासु, भूखमरी मानसिकता के कारण आज तीसरी दुनिया का निर्माण हुआ है। वैश्विक पर्यावरण के संदर्भ में जैविक गुणवत्ता में सकारात्मक परिवर्तन तब माना जा सकता था, जबकि बालश्रम की दर घटती, महिलाओं पर हिंसा व अत्याचार की घटनाएँ कम देखने–सुनने में आती। बारूद के मुहाने पर बैठी यह दुनिया क्या तृतीय विश्व युद्ध की प्रतीक्षा में है? फिर क्या कोई नागासाकी–हिरोशिमा बनेगा या सबका अस्तित्व ही

खतरे में है। ऐसा भी नहीं कि वैश्विक पर्यावरण के दौर में जहाँ पूरी दुनिया आपकी पंचमुठ्ठी में बंद है, जीवन सुविधामय एवं नवीनतम तकनीक से सज–धजपूर्ण शैली में सकरात्मक रूप में आया है जो जीवन की गुणवत्ता को दर्शाता है। परिधि में आये विश्व समाज की जैविक गुणवत्ता के साथ समझौता करना ही वैश्विक पर्यावरण का सुगठित, सुसंगत रूप होगा, क्योंकि कहाँ गया है 'जान है तो जहाँ है'।

जहाँ तक विकास से जुड़े प्रश्न हैं, तो पर्यावरण विकास का विरोधी नहीं है। किन्तु पूरी तरह से पर्यावरण की अनदेखी बहुत बड़े विनाश का कारण बन सकती है। हमें यह संज्ञान में रखना होगा कि पर्यावरण की अनदेखी सबके लिए परेशानी का कारण न बने यदि पर्यावरण की परिस्थितिबिगड़ती है, तो इसका असर सम्पूर्ण विश्व पर पड़ता है। इसके लिए हमें प्रतिवर्ष बदलते पर्यावरणीय हालातों का अध्ययन/अनुसंधान करना होगा, जितनी ऊर्जा व धन हम प्राकृतिक आपदाओं के आने के बाद उसको संवारने में खर्च करते हैं, उससे बहुत कम में हम सुनियोजित प्रयास करके इस समस्या से मुक्ति का प्रयास कर सकते हैं। पर्यावरण का संरक्षण संगठित प्रयासों से ही सम्भव है। इसके लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों, उद्योगपतियों, सामाजिक चिन्तकों, कृषकों तथा आमजन सभी की सकारात्मक सहभागिता की आवश्यकता है तभी विकास के साथ–साथ हमारा पर्यावरण बचा रहेगा, बना रहेगा और सभी के जीवन हेतु स्वच्छ प्राण वायु, पीने के लिए जल, खाने के लिए अप्रदुषित भोजन तथा कृषि के लिए अच्छी मिट्टी उपलब्ध हो सकेगी।

निष्कर्ष

सारी दुनिया में विकास को मानवता के परम लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है इसलिए विकास की प्रक्रिया और इसके निर्धारकों को समझने की जरूरत है, ताकि ऐसी नीतियों को लागू किया जा सकें, जिनसे विकास को बढ़ावा मिल सकें। पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था एक–दूसरे पर निर्भर है इसलिए जमीन, पानी, वन, जीव–जन्तु, खनिजों आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग व प्रबंधन तथा विश्व पर्यावरण की सुरक्षा जरूरी है। जिससे स्थिर आर्थिक विकास

हासिल किया जा सकें और खाद्य सुरक्षा, गरीबी और पर्यावरण ह्रास जैसी समस्याओं का खात्मा किया जा सकें। विकास प्रक्रिया तथा पर्यावरण सुरक्षा में लगे विभिन्न सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों द्वारा इन मुद्दों की पहचान और सभी परस्पर सम्बन्धित पहलुओं पर पूर्ण उपायों के साथ ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्त में यही कहा जा सकता है कि पर्यावरण प्रदूषण का निवारण करना सरकार से अधिक जनता का उत्तरदायित्व है। पर्यावरण प्रदूषण को रोकने का सर्वव्यापी उपाय है–जन चेतना या जन जागरण। जनता और सरकार दोनों को मिलकर इसकी रोकथाम पर गम्भीरता से कार्य करना चाहिए। जीवन में स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानियों के बढ़ते जाने से आज फिर मानव को वृक्षों के होने का महत्त्व समझ में आया है। राज्य में एक विशेष तिथि पर पौधे को रोपना 'वन महोत्सव' के आयोजनो के मुख्य अंग है। अतः विकास की प्रक्रिया जारी रखने के लिए हमें पर्यावरण विनाश को ध्यान में रखना अति आवश्यक है तथा इसकी विकृति एवं विनाश के लिए उत्तरदायी विकास प्रक्रिया को नियंत्रित करना भी आवश्यक है। अन्यथा जीवन के समाप्त होने का खतरा बढ़ सकता है। इसलिए वन तथा वन्य जीव संरक्षण हेतु शासकीय प्रयासों के साथ–साथ सामाजिक प्रयास तथा जन–जागृति का होना अत्यन्त आवश्यक है। जन–जागृति केवल पर्यावरणीय शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। हमारे देश में यद्यपि प्रदूषण उन्मूलन या 'पर्यावरण संरक्षण' सम्बन्धी अनेकों सावधानियाँ बरती जा रही हैं जैसे– सार्वजनिक कूड़ादान एवं शौचालय, विद्युत शव दाह गृह, ईधन हेतु गैस, उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्टों एवं धुएँ में प्रतिबन्ध, वाहनों से निकलने वाले धुएँ को साफ करने के विशेष फिल्टरों का प्रयोग, पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण के प्रति जागरूकता हेतु संचार माध्यमों का प्रयोग, स्वैच्छिक संस्थाओं तथा सरकार का पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चाएँ इत्यादि, लेकिन जब तक शैक्षिक माध्यम से यह जागरूकता तथा चेतना विकसित नहीं की जाएगी, तब तक देश का हर नागरिक न तो पर्यावरण संरक्षण में प्रतिभागी हो पायेगा और न ही अपना पूर्ण योगदान दे पायेगा।

पर्यावरण संरक्षण हेतु सुझाव

- अपने आस–पास कूड़ा–करकट इकट्ठा न होने देना।
- बाजार जाते समय कपड़े का थैला ले जाना, जिससे पॉलीथिन की जरूरत न हो।
- खाने–पीने की चीजों को रास्ते पर न डालें, उसे कूड़ेदान में डालें।
- धुम्रपान का प्रयोग न करें, अन्यथा इसके प्रयोग से स्वास्थ्य के साथ ही साथ पर्यावरण पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा।
- दिन में सूरज की रोशनी से काम चलायें।
- सी. एफ. एल. का उपयोग कर ऊर्जा बचाएँ।
- फोन, मोबाईल, लैपटॉप आदि का इस्तेमाल पावर सेविंग मोड पर करें।
- ठन्डे पानी से कपड़े धोयें।
- जितना हो सके पैदल चलें।
- घर में चीजों को भण्डारण दुरूस्त तरीके से करें, ताकि उनके व्यर्थ होने से बचा जा सके।
- जैविक खाद्य अपनायें।
- स्टेशनरी की दोनों साइड्स इस्तेमाल करें।
- ब्रश एवं शेव करते समय बेसिन का नल बंद रखें।
- प्लास्टिक की वस्तुओं का प्रयोग न करें।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

1. अस्थाना, मधु (2008), पर्यावरण एक संक्षिप्त अध्ययन, वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास।
2. कौशिक, अनुभा एवं सी.पी.(2005), पर्यावरण अध्ययन, नई दिल्ली : न्यू एज इण्टरनेशनल

3. गोयल, एम. के. (2009),पर्यावरण शिक्षण, आगराः विनोद पुस्तक मन्दिर।
4. चर्तुवेदी, जगदीश्वर(2000), सूचना समाज, नई दिल्लीः अनामिका पब्लिसर्स।
5. जोशी, डॉ. रंजन (2004), पर्यावरण अध्ययन, आगराः साहित्य भवन पब्लिकेशन्स।
6. कुमार, संतोष (2012) 'पर्यावरण, विकास एवं आपदा : पंचतत्व संतुलन', योजना, वर्ष 56, अंक 5, पृष्ठ 9–12
7. डब्ल्यू. सी. ई. डी. (1987), 'आवर कॉमन फ्यूचर', वर्ल्ड कमीशन ऑन एनवायरनमेन्ट एण्ड डेवलपमेंट, दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
8. बार्टेलमस, पीटर (1997), 'विदर इकोनॉमिक्स? फ्रॉम आप्टीमली टू सस्टेनेबिलिटी', एनवायरमेंट एंड डेवलनमेन्ट इकोनॉमिक्स, वॉलयूम–2, पार्ट–3
9. सिंह कटार (1999), ए 'रूरल डेवलपमेंटः प्रिंसिपल्स, पोलिसीज एंड मैनेजमेंट', नई दिल्लीः सेकेन्ड एडीशन सेज ।
10. सिंह कटार, (1999), 'सस्टेनेबल डेवलपमेंट सम रिफ्लेक्शंस', इंडियन जनरल ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स, वॉलयूम–54, नं. 1, पृष्ठ 4–41
11. सिंह, कटार (2001), 'प्रौद्योगिकी, पर्यावरण एवं विकास', योजना, वर्ष 46, अंक 12, पृष्ठ–2
12. शिजू, एम. वी. (2010) 'भारतीय पर्यावरण कानून और जलवायु परिवर्तन', योजना, वर्ष 54, अंक 4, पृष्ठ 9–10